जैव ईंधन की भूलभुलैया

डॉ. अरविंद गुप्ते

आज दुनिया के सामने खड़े कई संकटों में से शायद सबसे गंभीर संकट ऊर्जा का है। संसार की अधिकांश मशीनें खनिज तेलों पर चलती हैं। इन खनिज तेलों को जीवाश्म ईंधन भी कहा जाता है क्योंकि वे उन जीवधारियों के शरीरों से बने हैं जो कराड़ों वर्षों पहले ज़मीन के नीचे दफन हो गए थे। कोयला भी इसी श्रेणी का पदार्थ है। संसार के ताप बिजली घर ईंधन के रूप में कोयले या खनिज तेल का इस्तेमाल करते हैं।

बढ़ते औद्योगीकिकरण से बिजली और मशीनों की मांग बढ़ी है। इसके कारण खनिज तेल और कोयले की खपत भी बढ़ी है। किंतु खनिज ईंधनों में दो बड़ी खामियां हैं। पहली तो यह कि उनकी मात्रा सीमित है और ये जल्द ही समाप्त हो जाएंगे। दूसरी यह है कि इनके जलने से कई ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं जो पृथ्वी का तापमान बढ़ाने में योगदान देती हैं। इसे ग्लोबल वॉर्मिंग कहते हैं। ग्रीनहाउस गैसों में प्रमुख कार्बन डाइऑक्साइड है। तापमान बढ़ने से पृथ्वी के पर्यावरण में कई ऐसे हानिकारक परिवर्तन होने लगे हैं जिन्हें यदि रोका न गया तो मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

अतः मनुष्य के सामने विकट समस्या है। यदि खनिज ईंधनों का इस्तेमाल इसी तरह होता रहा तो ग्लोबल वॉर्मिंग के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। मगर यदि खनिज ईंधनों का इस्तेमाल न करें तो सारे वाहन, सारे हवाई जहाज़, सारे कारखाने ठप्प हो जाएंगे।

इस दुविधा से निपटने के लिए अब मनुष्य ने ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की खोज शुरू कर दी है। वैकल्पिक ऊर्जा का सबसे बड़ा और निकट भविष्य में समाप्त न होने वाला स्रोत सूर्य है। इससे प्राप्त होने वाली ऊर्जा इस मायने में 'स्वच्छ' होती है कि इसके उपयोग में ग्रीनहाउस गैसें नहीं बनतीं। सूर्य का प्रकाश मुफ्त होने के कारण इस ऊर्जा की कोई लागत भी नहीं होती। किंतु दुर्भाग्य से इसकी टेक्नॉलॉजी अभी तक पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाई है। सूर्य के प्रकाश को विद्युत में बदलने के उपकरण इतने सक्षम नहीं हुए हैं कि वे हमारी सारी ज़रूरतों को पूरा कर सकें। फिर इन उपकरणों की लागत भी अभी बहुत अधिक है।

ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोत पवन ऊर्जा और समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे की ऊर्जा है, किंतु इनसे प्राप्त होने वाली ऊर्जा बहुत ही कम होती है। परमाणु ऊर्जा एक ऐसा विकल्प है जो ग्रीनहाउस गैसों को जन्म नही देता और इससे बड़ी मात्रा में ऊर्जा पैदा की जा सकती है, किंतु इसके अपने खतरे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में जैव ईंधन खनिज ईंधनों के विकल्प के रूप में उभरे हैं।

आंतरिक दहन इंजिन दो प्रकार के जैव ईंधनों से चलाए जाते हैं - अल्कोहल और खाद्य तेल। अल्कोहल मक्का और शकर से बनाया जाता है। ईंधन के रूप में कोई भी खाद्य तेल इस्तेमाल किया जा सकता है।

रोचक बात यह है कि वाहनों के इंजिन सबसे पहले जैव ईंधनों से ही चलाने का इरादा था। जब रूडॉल्फ डीज़ल

ने बीसवीं सदी की शुरुआत में पहला आंतरिक दहन इंजन (जिससे वाहन चलते हैं) बनाया तो उन्होंने ईंधन के रूप में मूंगफली तेल की ही कल्पना की थी। इसी प्रकार, जब हेनरी फोर्ड ने बड़े पैमाने पर मोटर कारों का उत्पादन शुरू किया था तो उन्होंने अल्कोहल को ही ईंधन के रूप में देखा था क्योंकि अमेरिका में मक्का की पैदावार खूब होती है और मक्का से अल्कोहल बनाया जा सकता है। किंतु बाद में खनिज तेलों की उपलब्धता सरल हो जाने के कारण जैव ईंधनों को भुला दिया गया।

सत्तर के दशक में खनिज तेल की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि हुई तो जैव ईंधनों को फिर से याद किया गया। यह विचार उभरा कि जैव ईंधनों का इस्तेमाल किया जाए तो जीवाश्म ईंधनों से छुटकारा मिल सकता है। यह कहा गया कि जीवाश्म ईंधनों के निर्माण में जितनी कार्बन डाईऑक्साइड बनती है, जैव ईंधनों के निर्माण में उससे कम बनेगी। इसके अलावा जैव ईंधनों के इस्तेमाल से वाहन भी कम कार्बन डाईऑक्साइड उगलेंगे। जैव ईंधनों का नारा बुलंद करने वालों में एक प्रमुख आवाज़ पर्यावरण में काम करने वाले स्वयंसेवी संगठनों की थी।

1987 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें टिकाऊ विकास के लिए जैव ईंधनों का इस्तेमाल करने की सिफारिश की गई थी। इराक की पहली लड़ाई के बाद जब खनिज तेल की कीमतें बढ़ीं तब 1992 में अमेरिका और युरोपीय संघ ने सोचा कि उनके पास आवश्यकता से अधिक जो कृषि उत्पाद हैं उन्हें जैव ईंधन में बदलने से आयातित खनिज तेल पर उनकी निर्भरता कम की जा सकती है। इसी समय एक और घटना हुई। रियो डी जेनीरो में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित सम्मेलन में ग्लोबल वॉर्मिंग से लड़ने के एक प्रमुख हथियार के रूप में जैव ईंधनों की भूमिका को स्वीकार किया गया।

2004 से 2007 की अवधि में ग्लोबल वॉर्मिंग का हौवा पूरी दुनिया के सिर चढ़कर बोलने लगा। अमेरिका में किसानों का एक सशक्त समूह उभरा जिसे अपनी फसलों को जैव ईंधन में बदलने से फायदा-ही-फायदा होने लगा था। किंतु युरोपीय संघ पर तो जैव ईंधन की सनक सवार हो गई। हालांकि यह जानी-मानी बात थी कि यदि कृषि योग्य भूमि का बड़ा हिस्सा जैव ईंधनों के उत्पादन में लगाया गया तो खाद्यान्न की कमी हो जाएगी और उसकी कीमतें तेज़ी से बढ़ेंगी, मगर इसके बावजूद युरोपीय संघ ने जैव ईंधन को एक मंत्र की तरह जपना शुरू कर दिया ।

पिछले लगभग एक-डेढ़ साल से जैसे-जैसे जैव ईंधनों के दुष्परिणाम सामने आने लगे, यह सुहाना सपना चूर-चूर होता दिखाई दे रहा है। 2008 में खाद्यान्न की भयंकर कमी के कारण उनकी कीमतों में ऐसी बढ़ोतरी हुई है कि पूरी दुनिया में हाहाकार मच गया है। इस कमी का एक प्रमुख कारण खाद्यान्न फसलों की जगह ईंधन फसलों की बढ़ती खेती है। इसी से जुड़ा हुआ तथ्य यह है कि कई खाद्यान्नों, जिनमें प्रमुख मक्का है, से ईंधन बनाया जा रहा है। ग्रीनपीस और फ्रेन्डस ऑफ अर्थ जैसे स्वयंसेवी संगठन, जो जैव ईंधनों के गुण गाते अघाते नहीं थे, वही उनके प्रमुख आलोचक बन गए।

ब्राज़ील के वर्षा वन दुनिया के सबसे बड़े वर्षा वन हैं, और ये जैव विविधता के भंडार हैं। इनमें पेड़-पौधों और जंतुओं की ऐसी प्रजातियां पाई जाती हैं जो संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। हरे पेड़-पौधे हवा में से कार्बन डाईऑक्साइड लेकर उससे पोषण प्राप्त करते हैं। अतः पर्यावरण की दृष्टि से वनों का अत्यधिक महत्व होता है, किंतु अब ब्राज़ील के इन वर्षा वनों का सफाया करके इनकी जगह खेती की जा रही है। इसका कारण रोचक है।

अमेरिका में सोयाबीन और मक्का की खेती बड़े पैमाने पर होती है। किंतु जैव ईंधन के लिए मक्का इस्तेमाल होने के कारण किसानों ने सोयाबीन की जगह मक्का उगाना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप सोयाबीन की कमी होने लगी और उसकी कीमतें बढ़ने लगी। ब्राज़ील के किसानों ने जंगल साफ करके सोयाबीन उगाना शुरू कर दिया। जिस ज़मीन पर पशुपालन होता था उस पर भी खेती होने लगी और पशुपालकों ने जंगलों का रुख किया। पशुओं के चरने से और अधिक जंगल नष्ट होने लगे। सन 2007 के केवल अंतिम 6 महीनों में ब्राज़ील के 3,000 वर्ग किलोमीटर से अधिक जंगलों का नाश हो चुका था। यही हाल मलेशिया,

इंडोनेशिया, आदि अन्य विकासशील देशों के जंगलों का भी हुआ। इंडोनेशिया ने जैव ईंधन के रूप में पाम ऑइल बनाने हेतु जंगल काटकर पाम के पेड़ लगाना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि सबसे अधिक कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ने वाले देशों में वह इक्कीसवें से तीसरे नंबर पर आ गया।

केवल जंगलों का कटना ही पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाला अकेला कारक नहीं है। ब्राजील, इंडोनेशिया और मलेशिया में जंगलों को जलाकर भी साफ किया गया। इससे निकली ग्रीनहाउस गैसें भी पर्यावरण में फैलीं। इसके अलावा जंगल काटते समय ट्रैक्टरों, ट्रकों और अन्य भारी मशीनों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। इनसे भी ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं।

विडम्बना यह है कि यह दावा भी झूठा साबित होने लगा है कि जैव ईंधनों के जलने पर कम ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं। *साइंस* पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि यदि इन सब कारकों को गणना में शामिल किया जाए तो मक्का से बने इथेनॉल और खाद्य तेलों से बने डीज़ल जैसे जैव ईंधनों के इस्तेमाल से खनिज तेलों की तुलना में दुगना प्रदूषण पैदा होता है।

केवल शकर से बने अल्कोहल (इथेनॉल) के इस्तेमाल से ही कम ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं। यदि कचरे से जैव ईंधन बनाया जाए तो वह पर्यावरण की दृष्टि से लाभप्रद हो सकता है। किंतु इसकी टेक्नॉलॉजी अभी विकसित नही हो पाई है।

भोजन बनाम ईंधन

अब दुनिया के सामने यह समस्या है कि गरीबों का पेट भरने के लिए अनाज पैदा किया जाए या उस अनाज से अमीरों के वाहनों के लिए जैव ईंधन बनाया जाए। वैसे तो उत्तर स्वतः स्पष्ट है, किंतु जैव ईंधनों के साथ अब इतने राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वार्थ और दुराग्रह जुड़ गए हैं कि लोग इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं कि स्पष्ट कह दें कि 'राजा नंगा है'।

यदि मक्का से इथेनॉल बनाया जाए तो एक बड़ी कार की टंकी को इथेनॉल से पूरा भरने के लिए जितनी मक्का आवश्यक होगी उतनी मक्का से एक व्यक्ति एक साल तक भरपेट भोजन कर सकेगा। मक्का कहां जाए, इसका फैसला करना ही होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत अक्टूबर 2008
अंक 237

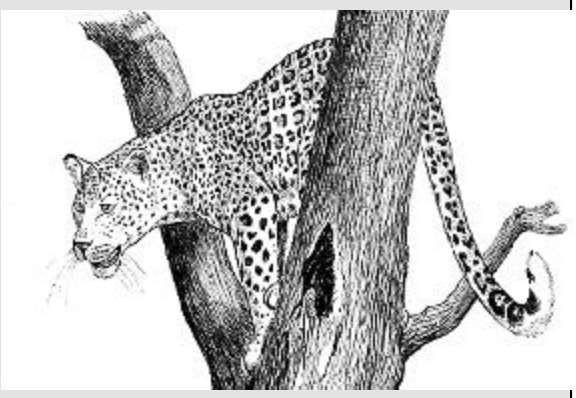

- **तेंदुओं की लव स्टोरी?**
- **फूल धोखाधड़ी भी करते हैं**
- **जीवाश्म ईंधन के बाद क्या?**
- **बिना बीज के पौधे**
- **अपराधी मस्तिष्क की पड़ताल के आधुनिक तरीके**